शंकर का जगत विचार

BA Part 1 paper 1st 2019-20

Dr. Arti Kumari
Asso. Prof.
Deptt. Of Philosophy
B.N. College T. M.B.U, Bhagalpur

भारतीय दर्शन में जगत की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि इसकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार ईश्वर के द्वारा किया गया है। इसे समस्त आस्तिक सम्प्रदाय द्वारा स्वीकार किया गया है। सांख्य योग एकमात्र ऐसा दर्शन है जिसमें विश्व की उत्पत्ति प्रकृति और पुरुष के पारस्पर संयोग द्वारा क्रमिक विकास का परिणाम है। इसके विपरीत समस्त भारतीय दर्शन में सृष्टिवाद को स्वीकार किया गया है। विश्व की उत्पत्ति ईश्वर ने की है जबकि अद्वैतवादी दार्शनिक होने के कारण शंकर ब्रह्म को पारमार्थिक रूप से सत्य मानते हैं। शंकर ने जगत की व्याख्या व्यावहारिक दृष्टिकोण से की है। उनके अनुसार सत्ता तीन प्रकार की है जिससे त्रिविध सत्ता की संज्ञा दी गई है — प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता एवं पारमार्थिक सत्ता।

प्रातिभासिक सत्ता या आभासिक सत्ता का अस्तित्व क्षणभर के लिए होता है जैसे- स्वप्न, संदेह इत्यादि। व्यावहारिक सत्ता वह है जिसका खंडन किया जा सकता है व्यवहार में तो वह सत्य है, परन्तु पारमार्थिक रूप से एकमात्र ब्रह्म की सत्ता सत्य है जिसमें किसी प्रकार का द्वैत नहीं पाया जा सकता क्योंकि ब्रह्म की सत्ता अद्वैत है।

पारमार्थिक सत्ता — उस सत्ता को कहते हैं जिसका विरोधी आभास कभी न दिखाई पड़े। अतः पारमार्थिक सत्ता त्रिकाल अबाधित है। शंकराचार्य ने ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता को सिद्ध करते हुए कहा है कि ब्रह्म

सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानंद) युक्त है जो निर्गुण, निराकार, निर्विशेष एवं निर्विकल्पित है। ब्रह्म को शंकर ने परब्रह्म की संज्ञा दी है।

परब्रह्म के स्वरूप की चर्चा करते हुए शंकर ने इसे त्रिकाल अबाधित माना है। जिसमें किसी प्रकार का भेद शामिल नहीं है। ब्रह्म के इस एक अद्वैत-वादी स्वरूप की व्याख्या के साथ प्रश्न उठता है कि जब पारमार्थिक रूप से एकमात्र ब्रह्म की सत्ता है तो जगत् की सृष्टि किसने की? इसके उत्तर में शंकर ने जगत् के स्वरूप एवं स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार परब्रह्म के किसी प्रकार का भेद नहीं है, परन्तु अपरब्रह्म अर्थात् ईश्वर माया (ब्रह्म की शक्ति) के द्वारा जगत् की सृष्टि करता है। ब्रह्म निर्गुण, अपरिमित, चैतन्य एवं कूटस्थ है परन्तु माया से आवृत होने के कारण जगत् नाना रूपात्मक सूक्ष्म, स्थूल इत्यादि दिखाई देता है।

जगत् की भारतीय दर्शन में तीन प्रकार से व्याख्या की गई है —

(1) आरंभवाद
(2) परिणामवाद
(3) विवर्तवाद

एक नवीन सृष्टि है।

परिणामवाद और विवर्तवाद दोनों ही सत्कार्यवादी सिद्धान्त हैं जिसके अनुसार सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति होती है। सांख्य और रामानुज दोनों परिणामवाद के पोषक हैं। सांख्य योग का मानना है कि जगत् प्रकृति का परिणाम है। सांख्य योग के अनुसार सत् कारण प्रकृति से सत् कार्य रूपी जगत् का विकास हुआ है। रामानुज इसके विपरीत मानते हैं कि सत् कारण एकमात्र पारब्रह्म परमेश्वर हैं जिसके परिणाम स्वरूप सत् कार्य रूपी जगत् की सृष्टि हुई है।

इसके विपरीत शंकर सत्कार्यवादी दार्शनिक हैं परन्तु उन्होंने परिणामवाद के स्थान पर विवर्तवाद का पोषण किया है। विवर्तवाद के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र पारमार्थिक सत्ता है। कारण (ब्रह्म) का सत्य है परन्तु कार्य (जगत्) ब्रह्म का वास्तविक रूपान्तरण (real transformation) न होकर विवर्त मात्र है। इस तरह शंकर ने विवर्तवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इनके अनुसार जगत् की व्याख्या विवर्तवाद के सिद्धान्त के द्वारा ही संभव है। जगत् की सृष्टि और आधार ईश्वर को स्वीकार किया गया है जो ईश्वर की स्वाभाविक क्रिया है। जिस प्रकार मनुष्य का श्वास लेना मानव की स्वाभाविक क्रिया है उसी प्रकार जगत् की सृष्टि करना ईश्वर की स्वाभाविक क्रिया है। इस तरह शंकर जगत् की व्याख्या स्वभाववाद के द्वारा करते हैं।

अपनी कला के द्वारा दिखाता है, इसी प्रकार ईश्वर एक
सत्ता भी अपनी माया शक्ति के द्वारा नानारूपात्मक
जगत् का निर्माण को प्रदर्शित करता है। इस तरह शंकर
ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का समाधान ईश्वर की माया
शक्ति के द्वारा विवर्त रूप में जगत् को प्रदर्शित करता
है। इस तरह कारण (ब्रह्म) सत्य है परन्तु उसका
कार्य जगत् (विवर्त) है। निरपेक्ष रूप से ब्रह्म ही
वास्तविक सत्ता है। जबकि जगत् निरपेक्ष रूप से वास्तविक
न होकर सापेक्ष रूप से वास्तविक है। सापेक्ष कहने का
अर्थ है कि जगत् की वस्तुएं एक-दूसरे की अपेक्षा
रखती हैं - जैसे - जाड़ा-गर्मी, पिता-पुत्र। जो आज
पिता है वह कल पुत्र था और आज जो पुत्र है वह कल
पिता होगा। इस तरह पुत्र जब पिता बनता है तो उसका
पुत्रत्व समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार संसार की वस्तुएं
भी सापेक्ष अस्तित्व रखती हैं जो हमेशा के लिए नहीं
होती हैं। पदार्थ अनित्य तथा क्षणिक होते हैं जिसके कारण
इन्हें नित्य नहीं कहा जा सकता है। सत्य नित्य तथा
आत्मा सत्य होता है। साथ ही वह अपरिवर्तनशील एवं
अपरिणामी होता है जबकि संसार की वस्तुएं परिवर्तनशील
एवं परिणामी होती हैं।

सत्य दिक्-काल से परे होता है
जबकि जगत् की वस्तुएं दिक्-काल से घिरी होती हैं।
सत्य अविनाशी है जबकि पदार्थ विनाशी होता है।

कहा है। शंकर का यह विचार बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के विचार से काफी मिलता-जुलता है। नागार्जुन ने दो प्रकार के सत्य को स्वीकार किया है –

(1) संवृत्ति

(2) परमार्थ

नागार्जुन संसार की सत्ता को केवल संवृत्ति सत्य मानते हैं जो सापेक्ष ज्ञान है जबकि इसके विपरीत परमार्थ दृष्टि से केवल निर्वाण सत्य है। यह निरपेक्ष सत्य होता है। शंकर के ~~नागार्जुन से~~ के विचार का नागार्जुन से मेल खाने के कारण उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध की संज्ञा दी गई। ~~इससे~~ दूसरी तरफ विज्ञानवादी बौद्धमत में भी सत्य की तीन कोटियां स्वीकार की गई हैं –

(1) परिनिष्पन्न

(2) परिकल्पित

(3) परतंत्र

परिकल्पित सत्य प्रतीतिमात्र या आभास है जिसे प्रतिभासिक सत्ता कहा जा सकता है। परतंत्र व्यवहारिक सत्ता के समान है। परिनिष्पन्न परमार्थ सत्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शंकर की त्रिविध सत्ता महायान बौद्धमत से मिलता-जुलता है।

शंकर ने जगत के स्वरूप को अनिर्वचनीय माना है। अनिर्वचनीय उसे कहते हैं जिसे

परे है। इस कारण शंकर ने जगत् को अनिर्वचनीय कहा है। सत्य वह होता है जो त्रिकाल अबाधित हो जिसके अनुसार एकमात्र ब्रह्म की सत्ता ही पारमार्थिक सत्य है, जगत् की नहीं क्योंकि जगत् सापेक्ष ज्ञान है जिसका खंडन ज्ञान के द्वारा हो जाता है परन्तु उसे पूर्णतः असत्य भी नहीं कहा जा सकता। जगत् की व्यावहारिक सत्ता है प्रातिभासिक सत्ता से व्यावहारिक सत्ता ज्यादा सत्य होती है। असत उसे कहते हैं जिसकी कभी उपलब्धि न हो। जबकि व्यावहारिक दृष्टि से जगत् की उपलब्धि होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जगत् किन्तु शंकर के दृष्टिकोण से पारमार्थिक दृष्टि से भले ही सत्य न हो, परन्तु व्यावहारिक रूप से जगत् की सत्ता सत्य है।